भारतीय ज्ञान परम्परा और हिंदी काव्य में अभिव्यक्तमानवीय मूल्य

मनीष कुमार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार - किसी भी देश का भविष्य उसके युवा निर्धारण करेंगे यह वैश्विक सत्य है। परन्तु, युवा दिशाभ्रमित और पथभ्रष्ट होता जा रहा है। मूल कारण मूल्यों का पतन। परम्परा को रूढ़ी मानकर त्याज्य वस्तु मानता हूँ एवं आधुनिकता से सामंजस्य नहीं बैठा पा रहा है। धर्म, दर्शन और अध्यात्म मध्यकालीन बोध घोषित कर दिये गये है। क्या इस स्थिति में मूल्यविहीन युवा वर्ग भविष्य का निर्माता बनेगा? स्पष्टतः नहीं। इस मूल्यविहीनता और पतनता से बचाने का उपाय है उन व्यक्तिगत, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना। इन मूल्यों का निर्माण, प्रचार-प्रसार और संशोधन साहित्य आंरभिक काल से ही करता आ रहा है, यही स्थिति हिंदी साहित्य की भी है। भारतीय ज्ञान परम्परा के विकास में हिंदी साहित्य की विशेषकर हिंदी काव्य की विशेष भूमिका रही है। आदिकाल और मध्यकालीन हिंदी काव्य में कवियों और भक्तों ने मूल्यों का निर्माण, संशोधन, परिवर्तन और उनको आत्मसात करके भारतीय ज्ञान परम्परा को समृद्ध करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है। इस स्थिति का दिग्दर्शन आदिकालीन और मध्यकालीन हिंदी काव्य के माध्यम से इस आलेख में प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द - आदिकाल, मध्यकाल, काव्य, मानवीय मूल्य, नैतिकता, संस्कृति, व्यक्तिगत, संशोधन, परिवर्तन, भारतोय ज्ञान परपरा।

शोध आलेख - भारतीय ज्ञान परंपरा सुदीर्घ काल से प्रवाहमान है। शास्त्र, कला और साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा को जीवंत बनाये हुए हैं। नित नये शास्त्र, कलाओं का आविष्कार और साहित्यिक रचनाओं द्वारा इस परम्परा का संवर्धन हो रहा है। भारत ज्ञान का साधक रहा है लेकिन, अध्यात्म को साथ लेकर चला है। आधुनिक रंग-ढंग में धुले मिले लोग तर्क और विज्ञान की अनियंत्रित मानसिक उठापटक में साध्य पर जोर दे रहे है। परन्तु, साधन पर विशेष दृष्टि नहीं है। भारत साधन और साध्य दोनों पर विशेष जोर देकर ज्ञान की कष्टमय साधना करता आ रहा है। वेदों, पुराणों और उपनिषदों से इत्तर महाभारत और रामायण के रचनाकार भी इन महान महाकाव्यों की रचना करने के पश्चात् भी अहं की भावना से रहित है। ऐसा इसलिए भी है कि भारतीय ज्ञान साधना में 'अहं का लोप' प्राथमिक शर्त है। इस अहं के लोप में मानवीय मूल्यों की जो संपदा है उसका महत्वपूर्ण योगदान है।

कितने ही ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों विद्वानों द्वारा शास्त्रों की रचना हुई। लेकिन, वही कालजयी रहे जो नैतिक, सांस्कृतिक और चारित्रिक मूल्यों को आत्मसात किये हुए थे। 'रावण' इसका स्पष्ट प्रमाण है। जो घोषित विद्वान होते हुए भी नायक न होकर खलनायक के रूप में प्रसिद्ध है। क्या 'रावण' की विद्वता और उसक चारित्रिक पतन को बचा पाया? स्पष्टतः नहीं। इसलिए भारतीय ज्ञान परम्परा में विद्वान या पंडित वही है जो चरित्रवान हो। चरित्रवान बनाने में मानवीय मूल्यों की बहुत बड़ी भूमिका रहो है। इस भूमिका को हिंदी काव्य भी आरंभ से निभाता आ रहा है। विशेषकर आदिकालीन और मध्यकालीन हिंदी काव्य। इस पर चर्चा करने से पूर्व यह जानता था अति आवश्यक है कि मानव मूल्य क्या ह? और इसका स्वरूप कैसा है? मानव मूल्य किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र के चित्रांकन का प्रमुख आधार होते हैं। मूल्य अच्छे या बुरे नहीं होते बल्कि वे किसी व्यक्ति, वर्ग या समुदाय के हितार्थ है उन्हीं से मूल्यों का भी मूल्य निर्धारण होता है। इस दृष्टि से मूल्य शाश्वत व सनातन होते हैं। बस, देशकालगत परिस्थितियों के अनुसार उपयोगी और अनुपयोगी होने के चलते समाज में लुप्त या प्रकट होते रहते है क्योंकि "मूल्य वैयक्तिक एवं वर्गीय मान्यताओं, आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुरूप महत्त्वपूर्ण होते हैं।"1 मूल्यों के अभाव में मनुष्य, "मनुष्य की काया में होकर भी मनुष्य नहीं है- वह पशु है। दनुज से मनुज के भेद का आधार मानव-मूल्यों पर आश्रित है। अतः मानव मूल्य ही मनुष्य की पहचान है।"2 इसलिए कोई भी मानव मनुष्यता को ग्रहण करने के लिए व कोई भी राष्ट्र सच्चरित्रवान नागरिकों के निर्माण के लिए उन व्यक्तिगत, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देता है जो राष्ट्र के विकास के अनुकूल हो। यह काय कभी धर्म या अध्यात्म के सहारे होता था तो कभी कला और साहित्य के माध्यम से। आधुनिक समाज यह कार्य शिक्षा नीति के माध्यम से करता है।

मानव मूल्यों का सृजक स्वयं मनुष्य ही है। यह उसके चिंतन-मनन का परिणाम है। मूल्यों की सृजना करके वह अपने उद्देश्य, लक्ष्यों और आवश्यकतों की पूर्ति करता था। परंतु, पारम्परिक भाव भूमि का चिंतक धर्म परायण होता था। इसलिए 'अहंम् की भावना' का लोप कहे या राजनीति जागरूकता अपने द्वारा निर्मित मूल्यों का सृजक कौन है? इसके संदर्भ में यही मत रखता था कि "निखिल सृष्टि और इतिहास-क्रम का नियन्ता किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था। समस्त मूल्यों का स्रोत वही था और मनुष्य की एकमात्र सार्थकता यही थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्मय स्थापित करने की चेष्टा करे।"3 इस तादात्मय करने की चेष्टा में नर में नारायणत्त्व होने की भी चेष्टा शामिल होती थी। सफलता नर में नारायणत्त्व को स्थापित करती थी तो प्रयास भर से मनुष्य मनुष्यित को ग्रहण अवश्य करता था। इस पूरी प्रक्रिया में अनादिकाल से

मूल्यों का सृजन होता आ रहा है, जिनकों विद्वानों ने वर्गीकृत करने का प्रयास किया। जिसमें मूल्यों का वर्गीकरण पाकृतिक मूल्य, विस्तारक मूल्य, सत्यं शिवं सुंदरम् अर्थात परक मूल्य, उदात्त मूल्य और आधुनिक मूल्य किया गया है।

असंख्य मूल्यों के व्याप्त होने पर भी समाज उन्हीं मूल्यों को स्वीकृत करता था, जो उसके व्यक्तिगत, चारित्रिक और नैतिक विकास में सहायक सिद्ध होते थे। चाहे वह मूल्य किसी भी व्यक्ति, समाज, वर्ग या राष्ट्र से संबंध क्यों न रखता हो। मूल्यों के ग्रहण के संदर्भ में मुख्यतः भारतीय समाज उदार रहा है।

साहित्य और मानव मूल्यों का अंतर्संबंध-

साहित्य मानव मूल्यों का सृजक और प्रचारक दोनों रहा है। आधुनिक युग में मूल्यों के संदर्भ में परिवर्तित दृष्टिकोण होने लगा था, क्योंकि आधुनिक दृष्टि के अनुसार मानव यह जानने लगा था कि मूल्यों का सृजक मनुष्य ही है और "मानववाद के उदयकाल में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यों का अधिनायक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी।''4 जिसके पश्चात् यह अवधारणा निर्मित होने लगी थी कि मूल्यों का सृजन विशेष जाति, धर्म, लिंग या वर्ग के हितार्थ के लिए होता था और सत्ता वर्ग इन मूल्यों को लोककल्याण के लिए उपयोगी बताकर अलग-अलग माध्यमों से प्रचारित करवाता था, जिसमें साहित्य भी एक माध्यम था। इस अवधारणा के कारण साहित्य और मूल्यों का अतर्संबंध क्या है? इस पर चिंतन-मनन होने लगा। इलियट रिचड्र्सन, मैथ्यू ऑर्नल्ड और धर्मवीर भारती ने इस संदर्भ में प्रकाश डाला है।

मूल्यों के प्रेरक सृजक तत्त्व धर्म, दर्शन और आधुनिक युग में विज्ञान रहे है। साहित्य भी इन तत्त्वों से प्रभावित होता रहा है। किंतु, प्रभावित होते हुए भी अपना अस्तित्व भिन्न बनाए रखा है। क्योंकि, विज्ञान जीवन के एकांगी ऐन्द्रिय पक्ष को ही प्रभावित करता है। इसलिए भौतिक मूल्यों का अधिकांश सृजन होता है। परंतु, मानव जीवन के दूसरे पक्ष "सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों से संबंधित है। इस दूसरे पक्ष की पुष्टि विज्ञान के द्वारा नहीं, अपितु कला और काव्य के द्वारा ही सम्भव है।"5 इसलिए प्रत्येक युग का साहित्य असंख्य मूल्यों के मध्य नैतिक, व्यक्तिगत और सांस्कृतिक मूल्यों का अनुसंधान करता है। क्योंकि, "उच्च सांस्कृतिक मूल्यों के अभाव में मनुष्य पशुता की ओर अग्रसर होता है। जिसके फलस्वरूप मानव समाज में पारस्परिक द्वन्द्व, संघर्ष, युद्ध एवं हिंसा की स्थितियों का प्रादुर्भाव होगा।"6 इसलिए मैथ्यू ऑर्नल्ड का यह कहना सत्य है कि "पुनः सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना की जाये।"7 यह दायित्व कौन ग्रहण करेगा?

इसके संदर्भ में भी स्पष्ट मत रखते है कि "कविता ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की जा सकती है।"8

इस चिंतन को इलियट आगे बढ़ाते हैं और कहते हैं कि "परम्परा में, किसी भी युग की सांस्कृतिक चेतना में, दो प्रकार के तत्त्व होते हैं। एक वे जो देश और काल की सीमाओं से आबद्ध होते हैं, उन्हों सीमाओं द्वारा निर्धारित होते है तथा वे शाश्वत एवं सनातन होत है।"9 यही दृष्टि साहित्यकार के पास होती है। वह युगानुरूप मूल्यों का ग्रहण और विस्तार भी करता है। जिसके चलते युग परिवर्तन के पश्चात् युगानुरूप सृजित मूल्य विलुप्त हो जाते हैं तो शाश्वत् मूल्य विस्तार के कारण अगली पीढ़ो को विरासत के रूप में मिल जात हैं। क्योकि "कलाकार का काम तो उन अनुभूतियों को अंकित कर देना एवं चिर स्थायी बना देना होता है, जिन्हें वह सबसे अधिक मूल्यवान समझता।" 10 तथा साहित्यकार की दृष्टि में वही मूल्यवान होता है जो व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक दृष्टि स उन्नति करता है। इसलिए साहित्यकार अधिक मूल्यवान मूल्यों को ही अपने पाठकों और अगली पीढ़ी को सम्प्रेषित करता है। इसलिए, डा. धर्मवीर भारती की हिंदी समीक्षकों के ऊपर की गई टिप्पणी सारगर्भित है जिसमें वे कहते हैं कि "आज तक सांस्कृतिक इतिहास में कौन-से मानवीय मूल्य ऐसे हैं जो अपेक्षाकृत स्थायी और चिरमर्मस्पर्शी है और सामयिक समस्याओं के समाधान की सापेक्षता में उनका क्या महत्त्व है- इन समस्त प्रश्नों पर या तो हिंदी समीक्षक ने विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी, या उसने इनके विषय में कुछ एकांगी, अधूरी और अपरिपक्व मान्यताओं को ही समीक्षा के वैज्ञानिक मापदण्ड समझने की भूल कर डाली।"11

उपरोक्त चिंतन-मनन के पश्चात् कह सकते हैं कि मूल्यों के संदर्भ में साहित्य की भूमिका निर्माणकर्ता, अनुसंधानतकर्ता, संशोधन, विस्तारक और समाज विरोधी मूल्यों का विरोध करना इत्यादि रही है। क्योंकि, साहित्यकार युगानुरूप मूल्यों का निर्माण करता है और आवश्यक नैतिक, सांस्कृतिक व व्यक्तिगत उन्नति से संबंधित मूल्यों का अनुसंधान भी करता है। युग और समय की द्रुत गति में समाज पीछे न छूट जाये इसके लिए शाश्वत-सनातन मूल्यों से इत्तर पारम्परिक मूल्यों को संशोधित व परिवर्तित करता है। यही नहीं इन मूल्यों का विस्तार भी करता है।

हिंदी कवियों ने इन भूमिकाओं को आदिकाल से ही आत्मसात किया। जब-जब समाज को आदर्शों की आवश्यकता हुई तब-तब ऐतिहासिक और पौराणिक आदर्शों का चित्रांकन महाकाव्यों के माध्यम स करके आदर्शों की स्थापना की और प्रकारान्तर से मूल्यों की भी। इस तथ्य का दिग्दर्शन आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकालीन काव्य क माध्यम से कर सकते हैं।

हिंदी काव्य में परिवर्तित मानव मूल्य-

हिंदी काव्य लगभग एक हजार वर्षों से निरंतर विकसित होता आ रहा है। इस विकसित होन की परम्परा में हिंदी काव्य ने निम्नलिखित मूल्यों और मान्यताओं को आत्मसात किया है। निम्न प्रेरक तत्त्वों, शासकों आर संस्कृतियों से संघर्ष और सम्मिश्रण की यात्रा में मूल्यों का निर्माण, संशोधन, अनुसंधान, विस्तार और विरोध किया है। इस पूरी प्रक्रिया के पश्चात् हिंदी काव्य अविरल रूप से बह रहा है।

आदिकालीन हिंदी काव्य और मानव मूल्य-

आदिकालीन काव्य किसी एक निश्चित क्षेत्र में नहीं रचा गया है। बल्कि, पूर्वी क्षेत्र में सिद्ध साहित्य, पश्चिम में जैन साहित्य, उत्तरोत्तर मुख्यतः पंजाब और राजपूताना में नाथ साहित्य और देश के राजस्थानी क्षेत्र में रासो साहित्य रचना गया। क्षेत्र, परिस्थितियाँ और प्रत्येक का सामाजिक आधार भिन्न होने के चलते प्रत्येक साहित्य ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय, परिस्थितिगत और सामाजिक आधारानुकूल मूल्यों का सृजन किया।

भारतीय इतिहास के प्राचीन और मध्यकालोन संधि स्थल पर बौद्ध धर्म, जैनों और ब्राह्मणों से संघर्ष, हूणों और अरबों के हमलों से जर्जर हो रहा था एवं आंतरिक कलह के पश्चात् शनैः शनैः पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। संघर्ष और हमलों के मध्य देश के पूर्वी भाग में वज्रयानी शाखा के रूप में विकसित हो रहा था। इसके समानांतर वेद निंदा, उपवास, व्रत, तीर्थ यात्रा और बाह्य विधि-विधान के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि का निर्माण कर रहा था। पूर्वी कबीलाई समाजों से सम्मिश्रण और जीवन-मरण के सवाल से संघर्ष करते हुए पंचमकार की साधना पर जोर दे रहा था। अपने आपको सिद्ध घोषित करता था तो अपने द्वारा रचित सिद्ध साहित्य के माध्यम से अपने मत का प्रचार कर रहा था।

देश की गैर ब्राह्मण सामान्य जनता इनका आधार थी। इनके मध्य वेद निंदा, व्रत, तीर्थ यात्रा, गंगा स्नान आदि की निस्सारता का मूल्य सृजित कर रहे थे। डोम्भिपा और कण्हपा कहते थे कि-

"गंगा जउना माझेरे बहर नाइ।
तांहि बुड़िली मातंगि पोइआली ले पार करई।''12
"आगम वेउ पुराणे, पण्डित मान बहंति।"13

जैसे उपदेश देते थे। पंच मकार (मांस, मदिरा, मैथून, मत्स्य और मुद्रा) की साधना पर जोर देते थे। इतना ही नहीं "निर्वाण के तीन अवयव ठहराये गये- शून्य, विज्ञान और महासुख । उपनिषद् में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिणाम का अंदाजा करने के लिए उसे सहवास सुख से सौगुना कहा था पर वज्रयान में निर्वाण के सुख का स्वरूप ही सहवास

सुख के समान बताया गया।' 14 इत्यादि उपदेशों के माध्यम से सामाजिक एवं परिस्थितियों के अनुकूल क्रांतिकारी मूल्य सृजित किये। युग और परिस्थितियों के परिवर्तित होने के पश्चात् अधिकांश मूल्य अवनती के मार्ग पर अग्रसर करने के मूल्य माने जाने लगे थे। जिसके परिणामस्वरूप "कापालिक जोगियों से बचे रहने का उपदेश घर में सास, ननद ही देती रहती थी।' 15 इन परिवर्तित परिस्थितियों का ही परिणाम था कि नाथों ने सिद्धों के अधिकांश मूल्यों का विरोध किया।

नाथ पंचमकार की साधना और अन्य पद्धतियों के विरोध में हठयोग, संयम, शाकाहार, अंतरसाधना, ब्रह्मचर्य और संन्यास पर जोर देते है। जातिभेद और अंधविश्वासों का प्रतिकार करते है। ये सभी मूल्य समाज के सामान्य हिंदुओं और मुसलमानों की उन्नति में सहयोगी थे। इसलिए नाथों ने "दोनों के विद्वेषभाव को दूर करके साधना का एक सामान्य मार्ग निकालने की संभावना समझी थी और वे उसका संस्कार अपनी शिष्य परंपरा में छोड़ गये थे। नाथ संप्रदाय के सिद्धांतों, ग्रंथों में ईश्वरोपासना के वाह्य विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई। घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। वेदशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई, तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गए हैं।" 16 इत्यादि मूल्य सिद्धों से भी ग्रहण किये।

सामान्य हिंदुओं और मुसलमानों दोनों तबकों को आकर्षित करने के लिए मूर्तिपूजा और बहुदेवोपासना को व्यर्थ ठहराते हुए इनकी रुचि, अभिरुचियों और इनकी आर्थिक स्थितिनुसार नवीन मूल्यों और साधना पद्धति का प्रतिपादन किया। इसके इत्तर जैनों के पास सिद्धों की तरह न जीवनमरण का सवाल था न ही सामान्य हिंदुओं और मुसलमानों को एकता के सूत्र में बांधने का नाथों जैसा प्रयास । बल्कि, जैनों का सामाजिक आश्रय सामाजार्थिक दोनों स्थितियों से सम्पन्न था।

जैनों द्वारा उपवास, ब्रह्मचर्य, संन्यास, अहिंसा, सद्चरण, पंचशील का पालन इत्यादि मूल्यों को पुनः समाज में स्वीकृति दिलाई।

रासो काव्य के केन्द्र में राजा, राजसभा, विवाह, युद्धस्थल, रानियाँ और उनका यौवन प्रमुखतः होते थे। ये राजाओं से आश्रय प्राप्त करते थे। ये "राजाश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे आर अपनी वीरोल्लासभरी कविताओं से वीरों को उत्साहित किया करते थे।"17 ताकि युद्ध क्षेत्र में जाने से सैनिक घबराएँ नहीं। इससे सैनिक निडर, निर्भय आत्मविश्वासी बनता था। वीरता और रोमांच का माहौल पैदा करने के लिए उल्लासभरी उक्तियाँ कही जाती थी जैसे कि-

"बारह वर्ष ले कूकर जीऐं,
और तेरह लै जिऐं सियार।

बरिस अठारह छत्री जीऐं,
आगे जीवन को धिक्कार। 18

परमाल रासो के इस उद्धरण के अलावा खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासा और हम्मीर रासो इत्यादि रासो ग्राथें में दानशीलता, पराक्रम शत्रुकन्या हरण, वीरता, कांति और यौवन जैसे चित्र अंकित है। पृथ्वीराजरासो शरणार्थी और स्त्री के आत्मसम्मान की रक्षा एवं वचनबद्धता जैसे पारम्परिक क्षत्रिय धर्म के कर्त्तव्यो का निर्वहन भी करता है। क्योंकि, पृथ्वीराज रासों में शाहबुद्दीन और पृथ्वीराज चौहान के बैर का कारण ही यही बताया गया कि "शहाबुद्दीन अपने यहाँ की एक सुंदरी पर आसक्त था, जो एक दूसरे पठान सरदार हुसैनशाह को चाहती थी। जब ये दोनों शाहबुद्दीन से तंग हुए तब हारकर पृथ्वीराज के पास भाग आए। शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज के यहाँ कहला भेजा कि उन दोनों को अपने यहाँ से निकाल दे। पृथ्वीराज ने उत्तर दिया कि शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है, अतः इन दोनों की हम बराबर रक्षा करेंगे।"19 इस प्रतिउत्तर ने पारम्परिक क्षत्रिया के नैतिक मूल्यों का पुनर्स्थापन किया।

सिद्धों, नाथों, जैनों और रासो ग्रंथकारों ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार मूल्यों का सृजन किया जिससे मूल्यों में वृद्धि हुई। परन्तु, अपनी देशकालगत परिस्थितियों और सामाजिक आधारानुकूल विशिष्ट मूल्यों का भी सृजन किया जो कि इनकी वर्गीय प्रतिबद्धता और संकुचित राष्ट्रीयता का परिचायक था। आदिकाल की सीमाओं से इत्तर भक्तिकालीन काव्य एक अखिल भारतीय दृष्टि का निर्माता उभरकर सामने आता है।

भक्तिकाव्य में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य सृजन और प्रतिकार-

भक्तिकाल के कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रहीम, रसखान और दादूदयाल इत्यादि भक्त कवियों का जीवन संघर्ष और देश की दशा और दिशा को परिवर्तित करने की क्षमता ने ही इस युग को 'स्वर्णकाल' की संज्ञा से विभूषित किया है। भक्तिकाव्य मुख्यतः मुगलकालीन परिस्थितियो में पल्लवित व पोषित हुआ है। उन विकट परिस्थितियों में शाश्वत मानवीय मूल्यों का सृजन भक्त कवि करते हैं जब "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे।"20 इस सांस्कृतिक संघर्ष और सम्मिश्रण के परिणाममस्वरूप लोकजागरण का उदय हुआ। भिन्न-भिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले कवियों का उद्भव हुआ। जिसके

संदर्भ में रामविलाश शर्मा कहते भी हैं कि "कबीर शरीर कारीगरों, सुर पशु-पालकों के, तुलसी किसानों के जीवन से जुड़े हैं।"21 इसलिए इनके काव्य में प्रतिनिधि वर्गों के मूल्य प्रतिपादित है। जिसके कारण इन भक्तिकालीन कवियों के काव्य में आत्मकल्याण, लोककल्याण, भक्ति, प्रेम, समरसता, निभयता, कर्मण्यता, दया, करुणा, निष्पाप, सत्य, अहिंसा, मानवता, आत्मविश्वास, आचरण की शुद्धता, परोपकार, सच्चरित्र का निर्माण, सत्यनिष्ठा, अनुशासनात्मकता, सहिष्णुता, नैतिकता, त्याग, संयम, ममता, विवेक बुद्धि, संकल्प शक्ति, समानता, भातृत्वता, उदारता, ज्ञान, आस्था और जिजीविषा इत्यादि मूल्यों का सृजन किया। संगति के प्रभाव का वर्णन करते हुए कबीर और तुलसीदास कहते भी हैं कि-

'कबीर तन पंषी भया, जहाँ मन वहाँ उडि जाइ।
जो जसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ।।- कबीर

'झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।
जेहि जाने जग जाई हेराई जथा सपन भ्रम जाई ।।- तुलसीदास

कुंभनदास तो इस भौतिक जीवन की चकाचौंध और राजपाट की सुख-सुविधाओं से बेहतर भक्ति को मानते हैं और निर्भयता का परिचय देते हुए कहते हैं कि-

"संतन को कहा सीकरी सो काम?
आवत जात पनहियाँ टूटी,
बिसरि करिबे गयो हरि नाम।
जिनकों मुख देते दुख उपजत,
तिनको करिबे परी सलाम ।।''22

ऐसी निर्भयता और साहस का परिचय भक्तिकालोन के कवि ही दे सकता था।

भक्तिकालीन कवियों ने मूल्यों का सृजन ही नहीं किया बल्कि मानव विरोधी मूल्यों का प्रतिकार भी किया। इसलिए जब भक्तिकालीन कवियों पर सरसरी दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि "नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि कवियों ने जिन मानवतावादी मूल्यों को अपने साहित्य (वाणी) का आधार बताया, वे शाश्वत है। स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व जैसे मूल्यों को आधार बनाकर जीवन यापन करने वाले इन कवियों की प्रगतिशील विचारधारा ही मानवतावादी संस्कृति की पोषक और उन्नायक बनी है। ये कवि अपने समाज में पनपते अन्याय, अत्याचार, ईष्या-द्वेष, साम्प्रदायिकता, अनास्था, अनैतिकता संबंधों में विघटन, शोषण आदि विकृतियों को देखकर विचलित नहीं होते हैं।"23 बल्कि इस स्थिति के कारकों की खोज भी करते है और उनका विरोध भी।

यह सब इनकी साधना,तपस्या और नवीन दृष्टि का ही परिणाम है कि नवीन मूल्यों का सृजन और मानव विरोधी मूल्यों का प्रतिकार कर पाये। परंतु, इस परम्परा को आगे बढ़ाने की जगह रीतिकालीन कवियों ने अवरोध उत्पन्न कर दिया। तत्पश्चात् राज्याश्रय में कवि और कविता विकसित हुइ। परिणामस्वरूप हिंदो काव्य की दिशा परिवर्तित हो गई।

रीतिकालीन काव्य और मानव मूल्य

रीतिकालीन नीतिपरक कवियों को छोड़ दे तो अधिकांश कवियों ने छल, कपट, वाक् चातुरता, धन अर्जन, भ्रम, संदेह और विस्मय आदि का ही बोलबाला है। इसलिए हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कहना सही है कि "बिहारी से लेकर ग्वाल और पजनेस तक सभी कवियों के चित्त में नायिका की ऐसी ऐश्वर्यदीप्त शोभा का भान था जिनमें कटाक्ष विक्षाभ की क्षमता न हो।"24 इसलिए रीतिकालीन कवियों ने राधा और सीता को भी एक सामान्य नायिका के तौर पर प्रस्तुत किया। इनके केन्द्र में नगर और नगरीय महिलाओं का अधिकांश चित्र है। इनका काव्य मुख्यतः नगरीय धनी सामंतों और राजाओं की इच्छा अनिच्छा से निर्मित होता था। इनका काव्य नख-शिख वर्णन, बारहमासा, नायक-नायिकाभेद, काव्य, लक्षय, निरूपण इत्यादि विषयों तक ही सीमित रह गया। लेकिन, बिहारी राष्ट्र के प्रति चिंतित भी होते दिखाई देते हैं। जब देखते हैं कि जयपुर क राजा जयशाह (महाराज जयसिंह) अपनी छोटी रानी के प्रेम में लीन होकर राजकाज और राज्य पर आने वाली विपत्ति से अनभिज्ञ है तो बिहारी सरदारों की सलाह से एक दोहा लिख भेजते हैं कि-

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु,
नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यो,
आगे कोन हवाल ।।''25

जिसके परिणामस्वरूप महाराज जयसिंह जागते हैं और बिहारी को सम्मानित भी करते हैं। भूषण छत्रसाल और शिवाजी की वीरता, शौर्य और पराक्रम का वर्णन करते ह।, परंतु, "शृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि थी जिनके लिये कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"26 तत्पश्चात् कर्मण्यता, वीरता, शौर्य, पराक्रम, निर्भयता और आध्यात्मिकता जैसे मूल्यों का दिग्दर्शन रीतिबद्ध कवियों में नहीं मिलता है। लेकिन, इस रिक्तता को कुछ हद तक रीतिकालीन नीतिपरक कवि संतुलित करने का प्रयास करते हैं।

गिरीधर कविराय, बताल, वृन्द, सम्मन, दीनदयाल और रामसहायदास इत्यादि रीतिकालीन कवियों ने जाति, गाँव, परिवार, घरबार और राजदरबार में क्या नीति अपनानी चाहिए और किन-किन नैतिकता का पालन करना चाहिए इसका उपदेश देते हैं। लोक स्वाथ, गर्व,

ईर्ष्या, अभिमान आदि मूल्यों को समाज क लिए अहितकारी बताते हैं। इनका काव्य भक्तिकालीन कवियों का स्मरण कराता है। इन नीतिपरक कवियों ने सामाजिक और व्यवहारिक शिक्षा भी दी। कबीर और तुलसी की भांति संगति के प्रभाव का वर्णन करते हुए वृंद कहते हैं-

'होत सुसंगति सहत सुख दुख कुसंग के थान।
गंदी और लुहार की देखहु बैठि दुकान।।'

मिष्ट भाषण के संबंध में सम्मत कहते हैं कि-

"सम्मत मीठी बात सों,
होत सबै सुख परु।
जेहि नहिं सीखो बोलिवो,
तेहि सीखो सब धूर ।। 27

रीतिपरक कवियों ने सामान्य जनमानस को सामाजिक और नैतिक शिक्षा का उपदेश दिया तो घाघ ने किसानों को किसानी के गुर अपनी कहावतों के माध्यम से सिखाये। इनसे इत्तर रीतिमुक्त कवि घनानंद पम के मार्ग का वर्णन करते हैं और प्रेम तत्त्व को जायसी की भांति अमरत्व प्राप्त कराते हैं और कहते हैं कि-

"अति सूधो सनेह को मारग है,
जहं नकु सयानप बाँक नहीं।
तहं साँचे चलै तजि आपनपौ,
झिझके कपटी जो निसाँक नहीं। "28

निष्कर्ष: आदिकालीन सिद्धों से लेकर रीतिकालीन कवि घनानंद तक हिंदी काव्य में अनवरत नवीन मूल्यों का सृजन, अनुसंधान, परिवर्तन, संशोधन और विस्तार होता आ रहा है। काव्य के प्रेरक तत्व परिवर्तित होते ही मूल्य भी परिवर्तित होते रहे। हिंदी काव्य निम्नलिखित प्रेरक तत्वों, शासकों, आंदोलनों, परिस्थितियों और विशेष जाति, धर्म, वर्ग आदि से संचालित भी होता रहा। जिसके कारण भी विशेष जाति, धर्म और वर्ग से संबंधित मूल्य सृजित हुए।

आदि से अंत तक काव्य के प्रेरण तत्व बदलते रहते हैं जिसके संदर्भ में शुक्लजी सही कहते हैं कि "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्रवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"29 इसी प्रकार साहित्य में भी युग परिवर्तन के पश्चात् मूल्य परिवर्तित होते रहते हैं। यह प्रक्रिया आधुनिक काल तक चलतो आ रही है। आधुनिक काल में देखते हैं कि आधुनिकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप

नवीन जीवन मूल्यों का सृजन होता है। हिंदी साहित्य आधुनिकता से प्रभावित होने लगता है। साहित्य में ईश्वर, राजा, धर्म और दर्शन का स्थान मनुष्य, तर्क और विज्ञान लेने लगता है।

आपनिवेशिक सत्ता से भारत का मजदूर, किसान, छात्र, शिक्षक, स्त्री, पुरुष, ग्रामोण, शहरी, सवर्ण, अवर्ण, अमीर और गरीब सभी संघर्ष करते दिखाई देते हैं। तत्पश्चात् भारत स्वतंत्रता प्राप्त करता है और विशेष जाति धर्म को लाभ पहुँचाने वाले मूल्यों की अपेक्षा राष्ट्र को और उसके प्रत्येक नागरिक के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा और कर्त्तव्या का बोध कराने वाले मूल्यों को सृजित करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. *1 मानव मूल्य व्याख्या कोश, भाग-1, सम्पादन - धर्मपाल मैनी, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 7*
2. *2वही, पृ. 8*
3. *3 मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण - 1999, भूमिका*
4. *4 वही, पृ. 14*
5. *5 भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्त, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2009, पृ. 180*
6. *6 वही, पृ. 180*
7. *7 वही, पृ. 180*
8. *8 वही, पृ. 180*
9. *9 पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ. तारकनाथ बाली, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2020, पृ. 199*
10. *10भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्त, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2009, पृ. 195*
11. *11 मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण-1999, पृ. 102-103*
12. *12 हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र- सह स. डॉ. हरदयाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. 59*
13. *13 वही, पृ. 60*
14. *14 हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण-2001, पृ. 7*
15. *15 वही, पृ. 7*
16. *16 वही, पृ. 10*
17. *17 वही, पृ. 17*
18. *18 वही, पृ. 29*
19. *19 वही, पृ. 22*
20. *20 वही, पृ. 34*
21. *21 मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 334*
22. *22 हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण-2001, पृ. 97*

23. 23 भक्तिकालीन साहित्य में मानववाद, डॉ. संध्या गौतम। IJAR 2018: 4 (4), पृ. 355-356
24. 24 हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. नई दिल्ली, संस्करण- 2019, पृ. 182
25. 25 हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण-2001, पृ. 97
26. 26 वही, पृ. 133
27. 27 हिंदी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ नगेन्द्र-सह सं. डॉ. हरदयाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. 368
28. 28 हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चालीसवाँ संस्करण-2001, पृ. 181
29. 29 वही, काल विभाग, पृ. 1

***